सबद
पीयर-रिव्यूड त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष- 1, अंक- 2 (अप्रैल–जून 2026)
ISSN: 3139-5317 (Online), 3139-5325 (Print)

प्रेमचंद के 'गोदान' में कृषक जीवन, आर्थिक शोषण और सामाजिक विषमता

प्रतिभा कुमारी
स्वतंत्र शोधार्थी

सारांश

यह शोध-पत्र प्रेमचंद के 'गोदान' में चित्रित कृषक जीवन को आर्थिक अभाव की एकरेखीय कथा के रूप में नहीं, बल्कि श्रम, ऋण, लगान, जाति, लिंग, धार्मिक अनुशासन और सामुदायिक प्रतिष्ठा से निर्मित जटिल सामाजिक अनुभव के रूप में पढ़ता है। अध्ययन का उद्देश्य होरी के जीवन-संघर्ष तथा धनिया, गोबर और झुनिया जैसे पात्रों की स्थितियों के माध्यम से यह समझना है कि ग्रामीण उत्पादकता किसान को सुरक्षा क्यों नहीं दे पाती और शोषण के अलग-अलग तंत्र किस प्रकार एक-दूसरे को सहारा देते हैं। पात्रों, संवादों, कथा-प्रसंगों, कथावाचकीय टिप्पणियों और 'गोदान' की प्रतीकात्मक परिणति का विषयगत विश्लेषण औपनिवेशिक कृषि-संबंधों पर उपलब्ध सत्यापित ऐतिहासिक तथा आलोचनात्मक स्रोतों की सहायता से किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि होरी की त्रासदी केवल व्यक्तिगत दुर्बलता या अपव्यय का फल नहीं है; ऋण पर चढ़ता ब्याज, लगान की अपारदर्शिता, बिरादरी का दंड, धार्मिक व्यय, पारिवारिक उत्तरदायित्व और 'मरजाद' की आकांक्षा मिलकर उसके श्रम-फल का अपहरण करते हैं। धनिया का श्रम और प्रतिरोध इस व्यवस्था के भीतर वैकल्पिक नैतिक विवेक उपस्थित करता है, जबकि गोबर का असहमति-भाव पीढ़ीगत परिवर्तन को सामने लाता है। 'गोदान' साहित्यिक यथार्थ के माध्यम से उस ग्रामीण संरचना की आलोचना करता है जिसमें आर्थिक शोषण सामाजिक वैधता ग्रहण कर लेता है और सामाजिक विषमता आर्थिक निर्भरता को पुनरुत्पादित करती है।

बीज शब्द- कृषक जीवन; ऋणग्रस्तता; महाजनी शोषण; जमींदारी; सामाजिक विषमता; स्त्री-श्रम।

प्रस्तावना

हिंदी उपन्यास की सामाजिक दिशा को निर्णायक रूप देने वाले रचनाकारों में प्रेमचंद का स्थान इसलिए विशिष्ट है कि उन्होंने आधुनिक जीवन की समस्याओं को नैतिक उपदेश या मनोरंजक घटना-विन्यास तक 'गोदान' के कृषक-संसार का अध्ययन आज भी इसलिए आवश्यक है कि उपन्यास किसान को केवल दरिद्र पीड़ित के रूप में नहीं दिखाता। होरी श्रमिक, पिता, पति, भाई, जाति-समुदाय का सदस्य और प्रतिष्ठा की आकांक्षा रखने वाला मनुष्य है। उसकी आर्थिक गणना से भावनाएँ बाहर नहीं हैं: गाय की इच्छा आजीविका, गृहस्थ-गरिमा और धार्मिक पुण्य—तीनों से जुड़ी है; बेटी का विवाह पारिवारिक स्नेह के साथ सामाजिक मान्यता का प्रश्न बनता है; झुनिया को आश्रय देना करुणा, उत्तरदायित्व और बिरादरी-विरोध का संयुक्त निर्णय है। इसी कारण उपन्यास में गरीबी की व्याख्या आय की कमी भर से संभव नहीं।

इस शोध की केंद्रीय समस्या यह है कि कृषक का निरंतर श्रम उसके जीवन में स्थायित्व क्यों नहीं लाता। मुख्य तर्क यह है कि 'गोदान' में उत्पादन और सुरक्षा के बीच अनेक दावेदार संस्थाएँ खड़ी हैं। महाजन ब्याज लेता है, जमींदारी तंत्र लगान और बेगार की माँग करता है, पुरोहित कर्मकांड को आर्थिक दायित्व बनाता है, पंचायत सामाजिक विचलन पर दंड लगाती है और परिवार की प्रतिष्ठा विवाह तथा संस्कारों में व्यय का दबाव रचती है। इन तंत्रों की शक्तियाँ समान नहीं हैं, फिर भी वे एक-दूसरे से जुड़कर कृषक की अधिशेष आय तथा निर्णय-स्वतंत्रता घटाते हैं। अध्ययन की सीमा

वर्ष- 1, अंक- 2 (अप्रैल–जून 2026)
ISSN: 3139-5317 (Online), 3139-5325 (Print)

उपन्यास के निकट पाठ और उसके औपनिवेशिक सामाजिक संदर्भ तक है; इसे ग्रामीण भारत का सांख्यिकीय प्रतिरूप या इतिहास का शाब्दिक दस्तावेज नहीं माना गया है।

कृषक जीवन: श्रम, अभाव और असुरक्षित जीविका

उपन्यास के आरंभ में ही होरी की पहली चिंता खेत की नहीं, जमींदार से समय पर भेंट की है। वह धनिया से कहता है—"गाँव में इतने आदमी तो हैं, किस पर बेदखली नहीं आई, किस पर कुड़की नहीं आई। जब दूसरों के पाँवों-तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल है।" यह कथन भय को निजी कायरता की तरह नहीं, खेती की अनिश्चित शर्त के रूप में सामने लाता है। भूमि पर श्रम करने वाला व्यक्ति बेदखली और कुर्की की संभावना से इतना परिचित है कि विनय उसे जीवित रहने की व्यावहारिक नीति लगती है।

परिवार का श्रम खेत, पशु, घर, ईंधन, भोजन और बाल-देखभाल के बीच विभाजित है। धनिया के श्रम का अलग मूल्यांकन नहीं, फिर भी वही उत्पादन और पुनरुत्पादन की कड़ी बनाए रखती है। औषधि के अभाव में बच्चों की मृत्यु तथा तन-पेट काटकर भी लगान न चुक पाने की कथावाचकीय टिप्पणी दिखाती है कि परिश्रम जीवन-सुरक्षा की गारंटी नहीं। 'गोदान' का कृषक यथार्थ समय, शरीर और आशा के लगातार क्षरण की प्रक्रिया है।

होरी को केवल रूढ़िवादी या निष्क्रिय कहने से उसके चरित्र की जटिलता नष्ट हो जाती है। वह समझौते करता है, भाइयों और पुत्र के बीच संतुलन खोजता है तथा प्रतिष्ठा के लिए आर्थिक जोखिम उठाता है। गाय की आकांक्षा दूध, खाद और गृहस्थी के साथ सामाजिक गरिमा तथा धार्मिक अर्थ से भी जुड़ी है। रामविलास शर्मा ने होरी की 'मरजाद' और धनिया की अधिक व्यावहारिक चेतना के अंतर को उपन्यास के केंद्रीय तनावों में माना है। होरी की नैतिकता शोषक व्यवस्था की सरल स्वीकृति नहीं; वह परिवार और समुदाय को टूटने से बचाने की इच्छा भी है। समस्या तब पैदा होती है जब संबंधों को बचाने वाली विनम्रता असमान सत्ता द्वारा उसके विरुद्ध प्रयुक्त होती है। प्रेमचंद पात्र की करुणा को उसकी आलोचना से अलग नहीं करते: होरी के निर्णयों में भूल है, लेकिन उन भूलों की कीमत उसकी संरचनात्मक निर्भरता कई गुना बढ़ा देती है।

ऋणग्रस्तता और महाजनी शोषण

होरी अपनी आर्थिक दशा को भोला के सामने स्पष्ट करता है—"सब तरह किफायत करके देख लिया भैया, कुछ नहीं होता। हमारा जनम इसी लिए हुआ है कि अपना रक्त बहाएँ और बड़ों का घर भरें। मूल का दुगुना सूद भर चुका; पर मूल ज्यों-का-त्यों सिर पर सवार है।" उद्धरण में ऋण का गणित और वर्ग-अनुभव एक साथ उपस्थित हैं। ब्याज चुका देना मूल ऋण को घटाता नहीं; इस प्रकार समय स्वयं महाजन की पूँजी बन जाता है और किसान का भविष्य पहले से गिरवी रहता है। दुलारी सहुआइन, मंगरू और दातादीन के उल्लेख से स्पष्ट है कि ऋण एक ही संस्था का नाम नहीं। बीज, विवाह, संस्कार या पुराना बकाया भिन्न कारण हैं; लेनदारों की सामाजिक भूमिकाएँ भी भिन्न हैं। छोटे ऋण मिलकर ऐसी देनदारी बनाते हैं जिसका साफ लेखा किसान के हाथ में नहीं। रॉयल कमीशन ने संकट-ऋण और अत्यधिक ब्याज को ऋणग्रस्तता के स्थायी कारणों में गिना था; उपन्यास इसे होरी की थकान और अंतहीन भुगतान के अनुभव में बदलता है।

जमींदारी, लगान और लेखे की अपारदर्शिता

जमींदारी तंत्र उपन्यास में केवल रायसाहब के व्यक्तित्व से नहीं बनता। कारिंदे, पटवारी, रसीद, बेदखली का भय, रसद

वर्ष- 1, अंक- 2 (अप्रैल–जून 2026)
ISSN: 3139-5317 (Online), 3139-5325 (Print)

और बेगार उसकी कार्यप्रणाली के हिस्से हैं। होरी का अनुभव है—“मैंने पाई-पाई लगान चुका दिया। वह कहते हैं, तुम्हारे ऊपर दो साल की बाकी है। अभी उस दिन मैंने ऊख बेची पचीस रुपये वहीं उनको दे दिये, और आज वह दो साल की बाकी निकालते हैं, मैंने कह दिया, मैं एक धेला न दूँगा।” आगे रसीद न मिलने का प्रसंग दिखाता है कि मौखिक भुगतान और लिखित खाते की असमानता किसके पक्ष में काम करती है। किसान नकद देता है, पर प्रमाण का नियंत्रण उसी संस्था के पास है जो बकाया घोषित करती है।

स्वामी औपनिवेशिक भू-व्यवस्था में मध्यस्थों की शृंखला और काश्तकार की असुरक्षा रेखांकित करते हैं। उपन्यास बताता है कि लेखे की अस्पष्टता विनम्रता, डर और सामाजिक दूरी से समर्थित होती है। रायसाहब भी राजस्व तथा प्रतिष्ठा-व्यय के दबावों का उल्लेख करते हैं, लेकिन उनकी कठिनाई होरी की कठिनाई के समान नहीं। एक पक्ष के पास वसूली का संस्थागत बल है, दूसरे के पास अपनी फसल और श्रम।

झुनिया को घर में रखने पर पंचायत होरी पर सौ रुपये और तीस मन अनाज का दंड लगाती है। यह दंड अदालत या जमींदार से नहीं आता, पर उसका आर्थिक प्रभाव उतना ही कठोर है: परिवार का संचित अनाज निकल जाता है और ऋण का बोझ बढ़ता है। पंचायत सामाजिक मानदंड को आर्थिक दंड में बदलती है; बिरादरी से बहिष्कार का भय अनुपालन सुनिश्चित करता है। इस प्रसंग से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण समुदाय केवल सहयोग का स्थल नहीं, संसाधन और प्रतिष्ठा नियंत्रित करने वाली सत्ता भी है।

कथावाचक धनिया की प्रतिक्रिया अंकित करता है—“धनिया दाँत कटकटाकर बोली—मैं न एक दाना अनाज दूँगी, न एक कौड़ी डाँड़। जिसमें बूता हो, चलकर मुझसे ले। अच्छी दिल्लगी है।” उसका प्रतिरोध दंड रोक नहीं पाता, किंतु पंचायत की नैतिक वैधता को चुनौती देता है। होरी बिरादरी में बने रहने के लिए भुगतान चाहता है; धनिया जीविका और न्याय को सामुदायिक स्वीकृति से ऊपर रखती है। ये सत्ता से निपटने की अलग रणनीतियाँ हैं।

जातिगत भेदभाव और सामाजिक नैतिकता

जाति-व्यवस्था श्रम, भोजन, यौन नैतिकता और प्रतिष्ठा को एक साथ नियंत्रित करती है। मातादीन और सिलिया के प्रसंग में ऊँची जाति का पुरुष दलित स्त्री के श्रम तथा देह पर अधिकार चाहता है, पर सार्वजनिक उत्तरदायित्व नहीं। सिलिया के परिजन हिंसक प्रतिकार से उसकी धार्मिक शुद्धता को चुनौती देते हैं; बाद में धनिया घायल सिलिया को आश्रय देती है। फिर भी सिलिया की असुरक्षा बनी रहती है।

झुनिया के प्रसंग में जाति, विधवा-स्थिति, यौन नैतिकता और वर्ग परस्पर जुड़ते हैं। गोबर के चले जाने पर सामाजिक दंड मुख्यतः गर्भवती झुनिया और उसे आश्रय देने वाले गरीब परिवार पर पड़ता है। धनिया दातादीन से कहती है—“हमको कुल-परतिष्ठा इतनी प्यारी नहीं है महाराज, कि उसके पीछे एक जीव को हत्या कर डालते। ब्याहता न सही; पर उसकी बाँह तो पकड़ी ही मेरे बेटे ने ही। किस मुँह से निकाल देते।” यहाँ परिवार की ‘इज्जत’ के विरुद्ध जीवन की रक्षा को रखा गया है। कथन स्त्री के लिए पूर्ण स्वतंत्रता की आधुनिक घोषणा नहीं, फिर भी वह सामाजिक नैतिकता का मानदंड बदलता है: प्रतिष्ठा से पहले उत्तरदायित्व और जीवित मनुष्य।

स्त्री-श्रम, लैंगिक असमानता और धनिया का प्रतिरोध

धनिया का श्रम खेत और घर के बीच अदृश्य दीवार को तोड़ता है। वह गोबर पाथती है, भोजन और पशु-संभाल करती है, खेत में काम करती है, बच्चों की देखभाल करती है और संकट में आर्थिक निर्णय लेती है। इस श्रम का अलग

वर्ष- 1, अंक- 2 (अप्रैल–जून 2026)
ISSN: 3139-5317 (Online), 3139-5325 (Print)

पारिश्रमिक नहीं, पर परिवार की उत्पादन-क्षमता उसी पर निर्भर है। स्त्री-श्रम की अदृश्यता इसलिए आर्थिक शोषण से जुड़ती है: घर की आय का आकलन पुरुष किसान के काम से होता है, जबकि जीविका की वास्तविक लागत स्त्री के अवैतनिक श्रम द्वारा घटाई जाती है।

वह झुनिया और सिलिया को आश्रय देकर दंडात्मक सामुदायिक नैतिकता के सामने वैकल्पिक गृहस्थ-नैतिकता रचती है। फिर भी वह पितृसत्तात्मक सीमाओं से पूरी तरह बाहर नहीं; परिवार की रक्षा और गृहस्थी की निरंतरता उसके निर्णयों का आधार हैं। शर्मा का संकेत उपयोगी है कि धनिया परिस्थितियों को होरी से अधिक व्यावहारिक ढंग से पहचानती है। उसका विवेक श्रम, भूख और देखभाल के अनुभव से निकलता है; वह कृषक परिवार की आर्थिक और नैतिक सह-निर्माता है।

गोबर पिता की विनय और धार्मिक तर्क से असहमत है। उसका कथन है—“यह सब मन को समझाने की बातें हैं। भगवान् सबको बराबर बनाते हैं। यहाँ जिसके हाथ में लाठी है, वह गरीबों को कुचलकर बड़ा आदमी बन जाता है।” यह संवाद वर्गीय शक्ति की प्रत्यक्ष भाषा प्रस्तुत करता है। होरी जहाँ असमानता को पूर्वजन्म, मरजाद और व्यावहारिक समझौते से ग्रहण करता है, गोबर उसे मनुष्य-निर्मित बल-संबंध के रूप में पहचानता है। फिर भी उसका विद्रोह नैतिक रूप से पूर्ण नहीं: झुनिया को गर्भावस्था में छोड़कर शहर जाना उसके साहस की सीमा दिखाता है।

नगर गोबर को मजदूरी, नकद आय और नए अनुभव देता है, पर वह मुक्ति का सरल क्षेत्र नहीं। मिल-मजदूरी की अनिश्चितता और श्रमिक संघर्ष शोषण के दूसरे रूप सामने लाते हैं। गाँव लौटकर वह लगान, रसीद और पंचायत पर अधिक निर्भीक है; उसने सत्ता को अपरिवर्तनीय मानना छोड़ दिया है। फिर भी स्थान बदलने से श्रम पर निर्भरता समाप्त नहीं होती।

होरी की अंतिम त्रासदी और ‘गोदान’ का प्रतीक

अंतिम चरण में होरी किसान से मजदूर बनता जाता है। भूमि और पशु पर नियंत्रण घटने के बाद वह सड़क पर पत्थर तोड़ता है; तपती लू में उसका शरीर टूट जाता है। यह मृत्यु उस दीर्घ प्रक्रिया की परिणति है जिसमें ऋण, लगान, दंड, विवाह-व्यय और प्रतिष्ठा ने उसकी उत्पादन-संपत्ति छीन ली। उसके व्यक्तिगत चुनाव इसमें भाग लेते हैं, पर वे शून्य में नहीं किए गए। अंतिम दृश्य में “धनिया यन्त्र की भाँति उठी, आज जो सुतली बेची थी उसके बीस आने पैसे लाई और पति के ठण्डे हाथ में रखकर सामने खड़े दातादीन से बोली—महाराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गो-दान है।” गाय का अभाव पूरे कृषक जीवन की विडंबना समेट लेता है: जो मनुष्य पशु, खेत और परिवार के लिए जीवन भर श्रम करता है, उसके पास मृत्यु-क्षण में संस्कार के लिए भी संपत्ति नहीं। बीस आने धनिया के श्रम से आए हैं; इसलिए प्रतीक पुरुष किसान की त्रासदी के साथ स्त्री-श्रम के अंतिम हस्तांतरण को भी दर्ज करता है।

चरित्रों के माध्यम से कृषक जीवन का विश्लेषण

होरी सीमित स्वामित्व, विस्तृत उत्तरदायित्व और असुरक्षित प्रतिष्ठा वाले कृषक का प्रतिनिधि है। वह शोषण पहचानता है, पर सामूहिक संघर्ष की क्षमता नहीं देखता। उसकी सहनशीलता में करुणा, भय और संबंध-बचाव साथ हैं; इसलिए त्रासदी प्रतिनिधिक है, सर्वसमावेशी प्रतिरूप नहीं।

धनिया भूख और संसाधन को अमूर्त मरजाद से ऊपर रखती है, फिर भी परिवार से बाहर स्वतंत्र जीवन की कल्पना

वर्ष- 1, अंक- 2 (अप्रैल–जून 2026)
ISSN: 3139-5317 (Online), 3139-5325 (Print)

नहीं करती। गोबर पीढ़ीगत असहमति और नकद अर्थव्यवस्था का संकेत है; उसके प्रश्न सत्ता का प्राकृतिककरण तोड़ते हैं, किंतु झुनिया के प्रति प्रारंभिक व्यवहार पितृसत्ता से उसकी निरंतरता दिखाता है। विधवा और आश्रित झुनिया सामाजिक दंड के केंद्र में है, पर श्रम तथा संबंध बनाने की उसकी क्षमता जीवटता का प्रमाण है।

दातादीन की धार्मिक प्रतिष्ठा महाजनी वसूली और जातिगत अधिकार को अतिरिक्त बल देती है। रायसाहब जमींदारी सत्ता के मानवीय और संरचनात्मक पक्ष सामने लाते हैं: आत्मचिंतन के बावजूद उनकी आय कृषक-उत्पादन पर टिकी है। पंचायत सामुदायिक नैतिकता को आर्थिक दंड में बदलती है। ये पात्र मिलकर वह जाल बनाते हैं जिसमें होरी का श्रम पुनर्वितरित होता है। शर्मा ने उपन्यास की धीमी, पीसती गति को होरी के जीवन-संघर्ष से जोड़ा है; यह चरित्र-रचना को सामाजिक प्रक्रिया में पढ़ने की उपयोगी दिशा है।

कथा-शिल्प, भाषा और यथार्थवाद

प्रेमचंद का यथार्थवाद सूचना-संग्रह का पर्याय नहीं। सारा राय ने प्रेमचंद के यथार्थवाद को उनकी वैचारिक और सर्जनात्मक प्रक्रिया से जोड़कर देखा है, जहाँ सामाजिक वास्तविकता चयन, विन्यास और मूल्यांकन के माध्यम से कथा बनती है। 'गोदान' में कथावाचक कभी पात्र के निकट जाकर उसकी चिंता, लज्जा और आत्मतर्क दिखाता है, कभी विडंबनापूर्ण दूरी से सामाजिक व्यवस्था की असंगति उजागर करता है। इस बदलती दूरी के कारण होरी एक प्रतीक बनते हुए भी मनोवैज्ञानिक विशिष्टता नहीं खोता।

संवाद उपन्यास की सामाजिक भाषा को बहुस्वरीय बनाते हैं। होरी की विनय, धनिया की काट, गोबर का प्रतिवाद और दातादीन का अधिकारपूर्ण स्वर वर्ग, पीढ़ी और लिंग की स्थितियाँ व्यक्त करते हैं। लोकभाषिक वाक्य-विन्यास ग्रामीण परिवेश को सजावटी रंग नहीं देता; वह पात्रों की तर्क-पद्धति और संबंधों का माध्यम है। कथावाचक के कथन को पात्र के मत से अलग रखे बिना इस बहुस्वरता को समझना संभव नहीं। उदाहरणतः गोबर का धार्मिक तर्क पर प्रहार प्रेमचंद का सीधा घोषणापत्र नहीं, कथा में उपस्थित एक युवा, अपूर्ण और विरोधी चेतना की आवाज है।

ग्रामीण और नगरीय प्रसंगों की समानांतर संरचना सामाजिक विषमता का पैमाना बढ़ाती है। शहर के शिक्षित तथा संपन्न पात्र प्रेम, विवाह, व्यवसाय और विचार की समस्याओं से जूझते हैं, पर उनके पास विकल्पों की वह व्यापकता है जो होरी के परिवार को उपलब्ध नहीं। यह समानांतरता कभी-कभी कथा को ढीला करती है, फिर भी संसाधनों की असमानता और आधुनिकता के विभाजित अनुभव को उजागर करती है। विडंबना तथा करुणा का संतुलन अंतिम गोदान में सर्वाधिक सघन है: धार्मिक आदर्श बना रहता है, किंतु गाय के स्थान पर बीस आने रखे जाते हैं। शीर्षक इस प्रकार एक अपूर्ण आकांक्षा, आर्थिक विफलता और संस्कारगत दबाव तीनों का प्रतीक बनता है।

आर्थिक शोषण और सामाजिक विषमता का अंतर्संबंध

'गोदान' में ऋण को जाति, लिंग और प्रतिष्ठा से अलग करके नहीं समझा जा सकता। झुनिया को आश्रय देने पर लगाया गया पंचायत-दंड सामाजिक नियम के उल्लंघन को अनाज और रुपये की वसूली में बदल देता है। सिलिया के श्रम का उपयोग और उसके संबंध का निषेध जाति तथा लिंग की संयुक्त विषमता है। बेटी का विवाह पितृसत्तात्मक उत्तरदायित्व है, लेकिन उसका व्यय महाजनी ऋण को बढ़ाता है। गोदान धार्मिक संस्कार है, पर उसके निर्वाह के लिए नकद चाहिए। हर उदाहरण में सामाजिक मान्यता आर्थिक संसाधन माँगती है और संसाधनहीनता सामाजिक अपमान बढ़ाती है।

वर्ष- 1, अंक- 2 (अप्रैल–जून 2026)
ISSN: 3139-5317 (Online), 3139-5325 (Print)

वर्गीय असमानता इन संबंधों को दिशा देती है। रायसाहब और होरी दोनों प्रतिष्ठा की चर्चा करते हैं, पर उनके जोखिम तुलनीय नहीं। स्वामी द्वारा रेखांकित कृषक और राजस्व-सत्ता के बीच असमान मध्यस्थ संरचना यह समझने में मदद करती है कि भुगतान, लेखा और बेदखली का अधिकार एक ही हाथ में क्यों नहीं होता। उपन्यास में महाजन, पुरोहित, पंचायत और जमींदार स्वतंत्र संस्थाएँ हैं; उनका गठजोड़ किसी औपचारिक षड्यंत्र से नहीं, कृषक की सीमित उपज पर उनके क्रमिक दावों से बनता है।

परिवार भी केवल शोषण का निष्क्रिय शिकार नहीं। होरी प्रतिष्ठा के नियमों को आत्मसात करता है, धनिया उनका प्रतिवाद करती है और गोबर उनसे दूरी बनाने की कोशिश करता है। इससे स्पष्ट है कि सत्ता बाहर से थोपी गई व्यवस्था के साथ अंतःकरण, आशा और भय में भी काम करती है। आर्थिक निर्भरता समुदाय के दंड को प्रभावी बनाती है; सामाजिक बहिष्कार का डर महाजन और जमींदार के सामने व्यक्तिगत प्रतिरोध घटाता है; लैंगिक श्रम परिवार को जीवित रखकर उसी अर्थव्यवस्था को चलने देता है। यही परस्परता उपन्यास को साधारण 'गरीब किसान बनाम अमीर शोषक' की कथा से अधिक जटिल बनाती है।

आलोचनात्मक मूल्यांकन

कृषक जीवन के चित्रण में प्रेमचंद की बड़ी उपलब्धि यह है कि वे संरचना को जीवित अनुभव में बदलते हैं। ऋण, लगान और बेगार अमूर्त शब्द नहीं रहते; वे भूख, बीमारी, टूटते पशु-संसाधन, विवाह की चिंता और अपमान के रूप में दिखाई देते हैं। आर्थिक शोषण बहुस्तरीय है और सामाजिक विषमता उसका वातावरण बनाती है। रामविलास शर्मा ने ठीक ही ध्यान दिलाया है कि उपन्यास में शोषण प्रत्यक्ष लूट तक सीमित न रहकर धीरे-धीरे कृषक की जमीन और जीवन-साधन छीनता है। होरी की मृत्यु इसी क्रमिक क्षरण की प्रतिनिधि परिणति है।

धनिया, झुनिया और सिलिया के माध्यम से उपन्यास ग्रामीण स्त्री को मात्र करुणा की वस्तु नहीं रहने देता। धनिया का श्रम और निर्णय-क्षमता विशेष रूप से प्रभावशाली है। फिर भी सीमाएँ मौजूद हैं। स्त्री की सक्रियता प्रायः परिवार, मातृत्व और गृहस्थी के नैतिक ढाँचे में व्यक्त होती है; स्वतंत्र आर्थिक संगठन का विस्तार कम है। सिलिया के प्रसंग में जातिगत यौन शोषण का तीखा उद्घाटन है, पर हिंसक प्रतिकार और प्रायश्चित्त की कथा उसकी स्वायत्त आवाज को पूरी तरह विकसित नहीं करती। ये सीमाएँ उपन्यास की आलोचनात्मक शक्ति को नकारती नहीं, उसके ऐतिहासिक क्षितिज को स्पष्ट करती हैं।

ग्रामीण और नगरीय कथाओं का संबंध भी उपलब्धि और सीमा दोनों है। शहर संसाधनों, विचारों और संबंधों का विस्तृत संसार देता है, जिससे ग्रामीण विषमता अधिक स्पष्ट होती है; कुछ नगरीय प्रसंग मुख्य कृषक-कथा की सघनता को शिथिल भी करते हैं। फिर भी यह विस्तार प्रेमचंद को वर्गीय समस्या को केवल गाँव के पिछड़ेपन का परिणाम मानने से बचाता है। मजदूरी, पूँजी, उपभोग और वैवाहिक संबंध शहर में भी असमान हैं। समकालीन संदर्भ में 'गोदान' की प्रासंगिकता किसी सीधी ऐतिहासिक समानता में नहीं, इस विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि में है कि श्रम की असुरक्षा तब बढ़ती है जब ऋण, लेखे, सामाजिक मान्यता और निर्णय-सत्ता पर उत्पादक का नियंत्रण कम हो।

निष्कर्ष

इस अध्ययन के आधार पर 'गोदान' का कृषक-संसार श्रम और गरीबी का स्थिर चित्र नहीं, आर्थिक तथा सामाजिक संबंधों की गतिशील संरचना है। पहले उद्देश्य के संदर्भ में निकट पाठ से स्पष्ट हुआ कि होरी का जीवन खेत तक सीमित नहीं। पशु, परिवार, बीमारी, विवाह, बिरादरी, धर्म और प्रतिष्ठा उसकी जीविका के अंग हैं। वह केवल शोषित

वर्ष- 1, अंक- 2 (अप्रैल–जून 2026)
ISSN: 3139-5317 (Online), 3139-5325 (Print)

व्यक्ति नहीं; आकांक्षा रखने वाला, संबंध बचाने वाला और कभी-कभी भूल करने वाला कर्ता है। धनिया का अवैतनिक श्रम, संसाधन-बोध और नैतिक प्रतिरोध कृषक परिवार की वह आधारभूत शक्ति है जिसे आय के औपचारिक हिसाब में जगह नहीं मिलती।

होरी की त्रासदी में व्यक्तिगत और संरचनात्मक पक्ष अलग नहीं किए जा सकते। उसकी 'मरजाद', समझौते और आर्थिक निर्णय संकट बढ़ाते हैं, किंतु इनका अर्थ उस व्यवस्था के भीतर बनता है जहाँ प्रतिरोध की लागत ऊँची और सुरक्षा के साधन कम हैं। प्रेमचंद का कथा-शिल्प संवाद, विडंबना, मनोवैज्ञानिक निकटता तथा ग्रामीण-नगरीय समानांतरता से इस जटिलता को अनुभवगम्य बनाता है। अंतिम गोदान में धार्मिक आकांक्षा, धनिया का श्रम और संपत्ति-विहीन मृत्यु एक ही प्रतीक में संकेंद्रित होते हैं। उपन्यास की समकालीन प्रासंगिकता ऐतिहासिक परिस्थितियों को हूबहू वर्तमान मानने में नहीं, उस सतत प्रश्न में है कि उत्पादक श्रम और जीवन-सुरक्षा के बीच कौन-सी आर्थिक तथा सामाजिक शक्तियाँ खड़ी हैं और न्यायपूर्ण व्यवस्था में उन पर किसका नियंत्रण होना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. प्रेमचंद, गोदान, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
2. शर्मा, रामविलास, प्रेमचंद और उनका युग, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
3. राय, अमृत, कलम का सिपाही, नई दिल्ली, हंस प्रकाशन।
4. वाजपेयी, नंददुलारे, प्रेमचंद एक साहित्यिक विवेचन, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
5. गोयनका, कमलकिशोर, प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य, नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ।
6. गोयनका, कमलकिशोर, प्रेमचंद अध्ययन की नई दिशाएँ, नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ।
7. राय, गोपाल, हिंदी उपन्यास का इतिहास, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
8. मिश्र, शिवकुमार, प्रेमचंद विरासत का सवाल, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
9. मदान, इन्द्रनाथ, प्रेमचंद एक विवेचन, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
10. पांडेय, मैनेजर, साहित्य और इतिहास-दृष्टि, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन।
11. सिंह, नामवर, इतिहास और आलोचना, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
12. शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, वाराणसी, नागरी प्रचारिणी सभा।
13. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस।